International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

अद्वैतवेदान्त में शक्तिवृत्ति

डॉ. लक्ष्मी कान्त विमल
वरिष्ठ शोध अध्येता,
श्री शंकर शिक्षायतन
डी.६/२५ वसंत विहार,
नई दिल्ली, भारत।

सारांश – भारतीय ज्ञानपरम्परा में शाब्दबोध प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है। इस विधा में सामान्यतः न्यायशास्त्र, मीमांसाशास्त्र एवं व्याकरण शास्त्र के उल्लेखनीय विचारविमर्श रहा है। परन्तु सभी दार्शनिक शाखा में स्वसिद्धान्त प्रतिपादन के अनुकूल उनका अपना पृथक् शाब्दबोध की प्रक्रिया है। अद्वैतवेदान्त में महावाक्यार्थ के क्रम में शाब्दबोधप्रक्रिया का उपयोग विद्वज्जगत् में प्रसिद्ध है। अद्वैतवेदान्त में शक्ति का स्वरूपविषय पर यह शोधपत्र प्रस्तुत है।

शाङ्करवेदान्त में अभिधा, प्रसिद्धा, मुख्या एवं शक्ति ये पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं और इनके प्रयोग के विभिन्न स्थल इस प्रकार प्रदर्शित किये जा सकते हैं –

मुख्या-शङ्कर ने कठोपनिषद्भाष्य में मुख्या का प्रयोग किया है। जैसे-उपनिषद् पद विद्या अर्थ में मुख्यवृत्ति से एवं ग्रन्थ अर्थ में भक्तिवृत्ति से प्रयुक्त है।[1] ब्रह्मसूत्रशारीरकभाष्य में भी इसका प्रयोग इस प्रकार से है-जैसे प्राण ही यहाँ आत्मरूप से विवक्षित है, यह कथन समुचित नहीं है क्योंकि आत्मशब्द मुख्यवृत्ति से प्राण का प्रतिपादन नहीं कर सकता है।[2] वाचस्पति मिश्र ने भी इस का प्रयोग किया है। 'अव्यक्त' पद शरीरद्वय का मुख्यवृत्ति से वाचक नहीं होता है।[3]

---

[1] तस्माद्विद्यायां मुख्यया वृत्त्योपनिषच्छब्दो वर्तते ग्रन्थे तु भक्त्येति। क. उ. शां. भा., सम्बन्धभाष्य

[2] प्राण एवेहाऽऽत्मा विवक्षित इत्येतदपि नोपपद्यते । नहि प्राणस्य वृत्त्या आत्मत्वम् अस्ति। ब्र. सू. शां. भा. १.३.८

[3] न च मुख्यया वृत्त्याऽतत्परमित्यौपचारिकं न भवति। भा. १.४.३

प्रसिद्धा-'प्रसिद्धा' शब्द से मुख्यावृत्ति अभिप्रेत है। वृद्धव्यवहार में जिस अर्थ के वाचकरूप में शब्द की शक्ति गृहीत होती है उसकी उसी प्रयोजन से उसी अर्थ में वृत्ति मुख्यावृत्ति है। जैसे गाय के नीचे भाग में गल-कम्बल लटकता रहता है। ऐसी आकृति विशेष में शक्ति से युक्त 'गाय' शब्द का 'गाय लाओ' आदि प्रयोग में वहाँ उसी अर्थ में वृत्ति है।[4] लौकिक वाक्यों के बोध के लिये केवल शक्ति का ही आश्रय आवश्यक है।[5]

अभिधा-मुख्यावृत्ति का नाम अभिधा है।[6] शङ्कर ने स्थान-स्थान पर अभिधान और अभिधेय शब्द का बार-बार प्रयोग किया है। जिससे यह अनुमान करना सम्भव है कि उन्हें अभिधा वृत्ति सर्वथा मान्य है। उदाहरण के लिये गौडपादकारिका पर भाष्य लिखते हुए वे कहते हैं कि-अभिधान और अभिधेय का अभेद होने पर भी अभिधान की प्रधानता से '०' यह अक्षर ही सब कुछ है, आदि रूप से निर्देश किया गया है। अभिधान की प्रधानता से निर्दिष्ट वस्तु का पुन: अभिधेय की प्रधानता से किया गया निर्देश अभिधान एवं अभिधेय का एकत्व प्रतिपादन करने के लिये है। अभिधेय की प्रतिपत्ति अभिधा के अधीन होने के कारण अभिधेय का अभिधानरूप होना गौण ही होगा, ऐसी आशंका हो सकती है। किन्तु अभिधय ब्रह्म और अभिधान '०' की एकत्व प्रतिपत्ति का यही प्रयोजन है कि उन दोनों को एक ही प्रयत्न से एक साथ लीन कर के उनसे विलक्षण ब्रह्म को प्राप्त किया जाय।[7]

शक्ति-शक्ति का नाम मुख्यावृत्ति है।[8] पद और पदार्थ दोनों का जो वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध है, वह शक्ति है।[9] पदजन्य ज्ञान का जो 'विषय' होता है, वह वाच्य है।[10] पदार्थ की स्मृति का जो जनक होता है, वह वाचक है।[11]

---

[4] प्रसिद्धशब्देन मुख्यावृत्तिरभिधीयते। यस्यार्थस्य वाचकत्वेन वृद्धव्यवहारे यः शब्दो गृहीतशक्तिको भवति तस्य तेनैव प्रयोजकेन तत्रैवार्थे वृत्तिः मुख्या वृत्तिरुच्यते। यथा सास्नादिमदाकृतौ गृहीतशक्तिकस्य गोशब्दस्य 'गामानय' इत्यादि प्रयोगे तत्रैवार्थे वृत्तिः। प. प्र. १

[5] लौकिकस्य वाक्यार्थावगमेन केवलं शब्दशक्तिरेवाश्रयः। सं. शा. अ. प्र. १.१०३

[6] अभिधा नाम मुख्यावृत्तिः। वे. क. ल. २६

[7] अभिधानाभिधेययोरेकत्वेऽप्यभिधानप्राधान्येन निर्देशः कृतः। ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वमित्यादि। अभिधानप्राधान्येन निर्दिष्टस्य पुनरभिधेयप्राधान्येन निर्देशोऽभिधानाभिधेययोरेकत्वप्रतिपत्त्यर्थः। इतरथा ह्यभिधानतन्धभिधेयप्रतिपत्ति रित्यभिधेयस्याभिधानत्वं गौणमित्याशङ्का स्यात्। एकत्वप्रतिपत्तेश्च प्रयोजनमभिधानाभिधेययोरेकेनैव प्रयत्नेन युगपत्प्रविलापयंस्तद्विलक्षणं ब्रह्म प्रतिपद्येतेति। गो. पा. का. शां. भा. १.१

[8] शक्तिर्नाम मुख्यावृत्तिः। प. च., पृ. २२७

[9] शक्तिर्नाम मुख्यावृत्तिः, पदपदार्थयोर्वाच्यवाचकभावः सम्बन्ध इति यावत्। तत्त्वा. सं.१.१३

[10] पदजन्यज्ञानविषयत्वं वाच्यत्वम्। तत्वा. सं. अ. चि. कौ. १.१३

[11] पदार्थस्मृतिजनकत्वं वाचकत्वम्। तत्वा. वही

शक्ति पद और पदार्थ दोनों की सम्बन्धस्वरूपिणी और जाति पर आधारित रहने वाली है। उसका अनुमान कार्य से होता है। उन-उन पदों से होने वाले पदार्थों का ज्ञान कार्य है। जाति की व्यक्ति के सदृश ज्ञान से ज्ञेय होकारण व्यक्ति का भान होता है। समान संवित् और संवित्संवेद्यता धर्म और धर्मी के तादात्म्य आदि से होते हैं अथवा जैसे न्याय के मत में 'नीलघट' आदि में 'नील' और 'घट' दोनों के संसर्ग में अपने रूप में रहने वाली शक्ति है। 'नील' आदि पदार्थ में शक्ति ज्ञात होती है, उसी प्रकार जाति के विषय वाली शक्ति जानी जाती है। व्यक्तिविषया तो स्वरूपसत् होती है। अथवा यह कहना उपयुक्त होगा कि जाति शक्य है और व्यक्ति लक्ष्य है।[12]

पदार्थ- पदार्थ दो प्रकार के हैं- शक्य एवं लक्ष्य।[13] पद में रहने वाली शक्तिवृत्ति के विषय को शक्य कहते हैं।[14] पदों की अपने-अपने अर्थों में रहने वाली मुख्यवृत्ति को शक्तिवृत्ति कहते हैं। जैसे 'घट' पद की बड़े गोलाकार उदर वाले आकृति से विशिष्ट वस्तु विशेष में शक्ति है।[15]

शक्ति के भेद

मुख्या वृत्तिरूप शक्ति योग एवं रूढ़ि के भेद से दो प्रकार की होती है।[16] योग-शङ्कर ने अपने भाष्य ग्रन्थों में योग एवं रूढ़ि शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। ब्रह्मसूत्र में एक स्थल पर भाष्य करते हुए शङ्कर ने सांख्य शास्त्र में प्रयुक्त अव्यक्त शब्द का रूढ़ अर्थ स्वीकार न करके उसका यौगिक अर्थ स्वीकार किया है। वह इस प्रकार है- सांख्यशास्त्र में त्रिगुणात्मक प्रधान को महत् आदि जगत् का स्वतन्त्र कारण माना गया है। उसी प्रकार महत् से पर अव्यक्त और अव्यक्त से पर पुरुष है, इस कठोपनिषद् के वाक्य में अव्यक्त को स्वतन्त्र कारण नहीं माना गया है। यहाँ केवल 'अव्यक्त' शब्द की प्रतीति होती है। वह शब्द 'न व्यक्तम् अव्यक्तम्' इस यौगिक बल से

---

[12] शक्तिश्च पदपदार्थयोः सम्बन्धरूपा जात्याश्रया सा च कार्यानुमेया। कार्य च तत्तत्पदजन्यपदार्थज्ञानम्। जातेर्व्यक्तिसमानसंवित्संवेद्यत्वाद् व्यक्तिभानम्। समानसंवित्संवि त्संवेद्यता च धर्मधर्मितादात्म्यादिना। अथवा यथा न्यायमते नीलो घट इत्यादौ नीलघटयोः संसर्गे स्वरूपसती शक्तिः। नीलादिपदार्थे च ज्ञाता शक्तिस्तथा जातिविषयाशक्तिज्ञायमाना। व्यक्ति विषया तु स्वरूपसती। किं वा जातिः शक्या व्यक्तिश्च लक्ष्या। अ. आ. ह्र. पृ. १५

[13] पदार्थश्च द्विविधः-शक्यो लक्ष्यश्चेति। वे. प., आगमपरिच्छेद पृ. १५२

[14] पदनिष्ठशक्तिविषयः शक्यः। वे. प. अ. दी., आगमपरिच्छेद पृ. १५२

[15] शक्तिज्ञाप्यः शक्यः। अ. आ. ह्र. पृ. १५

[16] (क) सा च द्विविधा योगो रूढिश्चेति। तत्त्वा. सं. २.१३

(ख) सा च द्विविधा रूढिः योगश्च। वे. क. ल. २९

अन्य सूक्ष्म एवं दुर्लक्ष्य पदार्थ में भी प्रयुक्त होता है और यह किसी अर्थ में रूढ़ नहीं है, किन्तु सांख्य सम्प्रदाय में जो रूढ़ि है वह उन्हीं का पारिभाषिक शब्द है, वह वेदार्थ निरूपण में कारण नहीं बन सकता है।[17]

एक अन्य स्थल पर ब्रह्मसूत्र भाष्य में शङ्कर अजा शब्द को न यौगिक मानते हैं और न आकृतिनिमित्तक अपितु कल्पना मानते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि उन्हें यौगिक एवं रूढ़ भेद स्वीकृत है। यद्यपि उन्होंने रूढ़ पद का साक्षात् ग्रहण यहाँ नहीं किया है तथापि आकृति निमित्त कहकर शब्दान्तर से उसका संकेत रूढ़ की ओर ही है। रत्नप्रभाकार ने आकृति का संकेत रूढ़ अर्थ में ही माना है।[18] तेज, जल एवं पृथ्वी में त्रैरूप्य होने के कारण वे ही तीनरूप वाली अजा कैसे समझी जाय जबकि उनमें अजा की आकृति नहीं है, जिससे की रूढ़ि अजा पद से उनका बोध हो और 'न जायते' इस यौगिकवृत्ति से उन तीनों का अजा पद से बोध सम्भव है, क्योंकि अग्नि, जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति होती है?[19]

मधुसूदनसरस्वतीकृत वेदान्तकल्पलतिका में योग की परिभाषा इस प्रकार है-जो वृत्ति शब्द के सिद्ध पदात्मक अवयव के द्वारा अन्य अर्थ को प्रस्तुत करता है, वह योगशक्ति है। उदाहरण-सोम शब्द चन्द्रमा अर्थ में रूढ़ है फिर भी 'उमया सह सोमः' अर्थात् 'उमा के साथ' इस व्युत्पत्ति के कारण महेश अर्थ को प्रस्तुत करता है। जैसे 'सीतया सहितः' इस व्युत्पत्ति के द्वारा ससीत शब्द निष्पन्न होता है उसी प्रकार सोम शब्द है। द्वितीय उदाहरण पङ्कज एवं पाचक शब्द है।[20]

महादेवानन्दसरस्वतीकृत तत्त्वानुसन्धान के अनुसार 'पद' के प्रकृति-प्रत्ययरूप अवयवों में जो अर्थ बोधक शक्ति होती है, वह योगशक्ति है। जैसे-पाचक आदि पदों की 'पाककर्ता' आदि अर्थों में योगशक्ति रहती है। 'पाचक' पद में 'पच्' धातु के अनन्तर 'अक' प्रत्यय को जोड़ देने पर पाचक शब्द निष्पन्न होता है। तब 'पच्' धातु की 'पाक' इस अर्थ में शक्ति है और 'अक' प्रत्यय की 'कर्ता' इस अर्थ में शक्ति है। इन दोनों अवयवों की शक्ति से 'पाककर्ता' पुरुष का बोध होता है।[21]

---

[17] न ह्यत्र यादृशं स्मृतिप्रसिद्धं स्वतन्त्रं कारणं त्रिगुणं प्रधानं तादृशं प्रत्यभिज्ञायते। शब्दमात्रं ह्यत्राव्यक्तमिति प्रत्यभिज्ञायते स च शब्दो न व्यक्तमव्यक्तमिति यौगिकत्वादन्यस्मिन्नपि सूक्ष्मे सुदुर्लक्ष्ये च प्रयुज्यते। न चायं कस्मिंश्चिद् रूढः। या तु प्रधानवादिनां रूढिः सा तेषामेव पारिभाषिकी सती न वेदार्थनिरूपणे कारणभावं प्रतिपद्यते। ब्र. सू. शां. भा. १.४.१

[18] नायमजाकृतिनिमित्तोऽजाशब्दः नापि यौगिकः किं तर्हि? कल्पनोपदेशोऽयम्। ब्र. सू. शां. भा. १.४.१०

[19] किं तेजोऽबन्नेष्वजाशब्दो रूढो, न जायते इति यौगिको वा। ब्र. सू. शां. भा. १.४.१०

[20] योगो नाम शब्दस्यान्यत्र क्लृप्तावयवद्वारेणार्थान्तरवृत्तिः। यथा चन्द्रे रूढस्य सोमशब्दस्य, उमया सह वर्तते, इति व्युत्पत्त्या महेशे वृत्तिः, यथा वा, पाचकपङ्कजादिपदानाम्। वे. क. ल. २९

[21] (क) अवयवशक्तिर्योगः। यथा पाचकादिपदानाम्। तत्त्वा. सं. २.१३

सामान्यरूप से 'योगपद' तीन प्रकार के होते हैं। कृदन्तपद, तद्धितपद एवं समस्तपद। बृहद्देवता के अनुसार शब्द की व्युत्पत्ति पाँच प्रकार से सम्भव है। धातु से निष्पन्न, धातु से निष्पन्न पदों से निष्पन्न, समस्तपद से निष्पन्न, वाक्य से निष्पन्न एवं प्रकीर्ण रूप से निष्पन्न।[22]

रूढ़ि-शङ्करर ने रूढ़ि शब्द एवं रूढ़ शब्द का प्रचुररूप से प्रयोग किया है। जैसे कठोपनिषद्भाष्य में वाजश्रवा शब्द की व्युत्पत्ति के क्रम में कहा है कि 'वाज' अन्न को कहते हैं, उसके दान आदि के कारण जिसका 'श्रव' अर्थात् यश हो उसे वाजश्रवा कहते हैं, अथवा रूढ़ि से यह नाम भी हो सकता है।[23]

शङ्कर ने छान्दोग्योपनिषद् भाष्य में कहा है कि 'यव' और 'वराह' आदि शब्दों के समान 'ब्रह्मसंस्थ' शब्द परिव्राजक अर्थ में ही रूढ़ नहीं है, क्योंकि यह तो ब्रह्म में स्थित रूप निमित्त को लेकर ही प्रवृत्त हुआ है। रूढ़ि शब्द किसी निमित्त को स्वीकार नहीं करते।[24] 'यव' और 'वराह' आदि शब्दों के समान 'ब्रह्मसंस्थ' शब्द परिव्राजक अर्थ में रूढ़ नहीं है उसका भी परिहार कर दिया गया है, क्योंकि उसकी ब्रह्मनिष्ठा होना सम्भव है, और किसी की नहीं। किसी ने जो कहा है कि रूढ़ शब्द निमित्त को स्वीकार नहीं करता, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि गृहस्थ, तक्षा और परिव्राजक आदि शब्द देखे जाते हैं। गृह में रहना, पारिव्राज्य आदि अर्थात् सब कुछ छोड़कर चला जाना और तक्षण अर्थात् काष्ठ छेदन आदि निमित्तों को लेकर गृहस्थ और परिव्राजक शब्द आश्रम विशेष अर्थ में और 'तक्षा' शब्द जाति विशेष अर्थ में रूढ़ देखे जाते हैं। गृहस्थ आदि शब्द जहाँ-जहाँ वे निमित्त हैं वहीं-वहीं प्रवृत्त नहीं होते, क्योंकि ऐसी प्रसिद्धि नहीं है।[25]

तात्पर्य यह है कि गृहस्थ आदि शब्द आश्रम विशेष में और तक्षा आदि शब्द जाति विशेष में प्रसिद्ध है किन्तु तक्षा आदि शब्द अपने निमित्त को लेकर सर्वत्र प्रसिद्ध नहीं है। इसीलिये कोई भी तक्षण करने वाला तक्षा

(ख) अवयवशक्तिर्योगः यथा पाचकादिपदानाम्। प. च. पृ. २२७

[22] धातुजं धातुजाज्जातं समस्तार्थजमेव वा।
वाक्यजं व्यतिकीर्णं च निर्वाच्यं पञ्चधापदम्।। (बृ. दे. २.१०४ द्), इण्डियन थियरी आफ मिनिंग् पृ. ६०

[23] वाजमन्नं तद्दानादिनिमित्तं श्रवो यशो यस्य स वा वाजश्रवा रूढितो वा। क. उ. शां. भा. १.१.१

[24] न च यववराहादिशब्दवद् ब्रह्मसंस्थशब्दः परिव्राजके रूढः ब्रह्मणि संस्थितिनिमित्तमुपादाय प्रवृत्तत्वात्। न हि रूढिशब्दा निमित्तमुपाददते। छा. उ. शां. भा. २.२३.१

[25] यत्पुनरुक्तं यववराहादिशब्दवत्परिव्राजके न रूढो ब्रह्मसंस्थशब्द इति तत्परिहृतम्। तस्यैव ब्रह्मसंस्थतासम्भवान्नान्यस्येति। यत्पुनरुक्तं रूढशब्दा निमित्तं नोपाददत इति, तन्न, गृहस्थतक्षपरिव्राजकादिशब्ददर्शनात्। गृहस्थितिपारिव्राज्यतक्षणादिनिमित्तोपादाना अपि गृहस्थपरिव्राजकावाश्रमिविशेषे विशिष्टजातिमिति च तक्षेति रूढा दृश्यन्ते शब्दाः। न यत्र यत्र तानि निमित्तानि तत्र तत्र वर्तन्ते प्रसिद्ध्यभावात्। छा. उ. शां. भा. २.२३.१

नहीं कहलाता क्योंकि तक्षणरूप निमित्त के होते हुए भी तक्षा शब्द रुढ़ि के द्वारा जाति विशेष में ही नियन्त्रित कर दिया गया है। इसी प्रकार घर में रहने वाला कोई भी व्यक्ति गृहस्थ हो सकता है किन्तु ऐसी प्रसिद्धि नहीं है। प्रसिद्धि ही रुढ़ि है। रुढ़ि के द्वारा गृहस्थ आश्रम विशेष में संकुचित कर दिया गया है। यही स्थिति परिव्राजक शब्द की भी है। कहीं भी गमन करने वाले को परिव्रजणरूप निमित्त के होने से परिव्राजक नहीं कहा जाता क्योंकि परिव्राजक शब्द सब कुछ छोड़कर घर से निकल कर संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाले के लिये ही प्रसिद्ध है।

एक अन्य उदाहरण में भी रूढ़ शब्द का प्रयोग शङ्कर ने किया है। ब्रह्मचारी बोला-आपने जो कहा है कि प्राण ब्रह्म है, वह प्रसिद्ध पदार्थ वाला होने के कारण यह तो मैं जानता हूँ, जिसके रहने पर जीवन रहता है और जिसके चले जाने पर जीवन नहीं रहता लोक में उस वायु विशेष में ही 'प्राण' शब्द रूढ़ है।[26]

मधुसूदन सरस्वती विरचित वेदान्तकल्पलतिका के अनुसार-प्रकृति-प्रत्ययरूप अवयव समुदाय जो सभी लोगों में अपरिवर्तनीय प्रयोग वाला हो अथवा गाय आदि आकृति के वाचक रूप में हो, वह समुदाय शक्ति वाली वृत्ति रूढ़ि है। जैसे-अक्ष आदि पदों की एवं गवादि पदों की समुदाय शक्ति के द्वारा क्रमशः अक्ष अर्थ एवं गाय अर्थ में रूढ़ि है।[27]

महादेवानन्द-सरस्वतीकृत-तत्त्वानुसन्धान के अनुसार-पद के प्रकृति-प्रत्ययरूप अवयवसमुदाय में जो अर्थ बोध होती है, उसी को रूढ़ि शक्ति कहते हैं। जैसे 'घट' आदि पदों की 'घट' आदि अर्थ में शक्ति रूढ़ि है। वह रूढ़ि व्यवहार के द्वारा ग्रहण की जाती है।[28]

शक्ति की अतिरिक्त पदार्थता

शाङ्करवेदान्तियों के अनुसार शक्ति पद में होती है।[29] प्रभाकर ने सिद्ध अर्थ में पदों की वृत्ति नहीं मानी है अपितु कार्य से अन्वित अर्थों में ही पदों की शक्ति मानी है। उनका कहना है कि 'घड़ा लाओ' यहाँ पर आनयनरूप कार्य से सम्बद्ध 'घट' व्यक्ति को जब कोई देखता है तभी घट पद की शक्ति का ग्रहण घट व्यक्ति में होता है। अन्यथा 'घड़ा' कहने मात्र से शक्तिग्रह नहीं होता? किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, तब तो आनयन पद की शक्ति

---

[26] स होवाच ब्रह्मचारी विजानाम्यहं यद् भवद्भिरुक्तं प्रसिद्धपदार्थकत्वात्प्राणो ब्रह्मेति, यस्मिन्सति जीवनं यदपगमे च न भवति, तस्मिन्वायुविशेषे लोके रूढः। छा. उ. शां. भा. ४.१०.५

[27] तत्र रूढिर्नाम निखिलजनपदेष्वविप्रतिपन्नप्रयोगेण वा, गवाद्याकृतिवाचकत्वेन वा वृत्तिः समुदायशक्तिः, इत्याख्यायते यथा अक्षादिपदानां गवादिपदानां च। वे. क. ल. २९

[28] रूढिः समुदायशक्तिः यथा घटादिपदानाम्। सा च व्यवहारादिना गृह्यते। तत्त्वा. सं. २.१३

[29] शक्तिः पदे। अ. न. १२

का ग्रहण अपने अर्थ में होगा ही नहीं, क्योंकि घट तो आनयन क्रिया से अन्वित है तथा आनयन क्रिया किसी दूसरी क्रिया से अन्वित नहीं है। अतः सभी पदों का अपने-अपने अर्थ में मुख्यवृत्ति है उसी को शक्ति कहते हैं।[30]

वेदान्तपरिभाषाकार धर्मराजाध्वरीन्द्र शक्ति को पृथक् पदार्थ मानते हैं।[31] उस शक्ति के होने में यह प्रमाण है कि शक्ति के होने पर कार्य होता है और शक्ति के न होने पर कार्य नहीं होता। यदि अग्नि में दाह के अनुकूल शक्ति न हो तो अग्नि से दाह कभी भी नहीं होगा। जल से दाह क्यों नहीं हो जाता? क्योंकि जल में दाह के अनुकूल शक्ति नहीं है। कहीं-कहीं पर प्रतिबन्धक के अभाव को दाह का कारण नैयायिकों ने माना है, यह मानना समुचित नहीं है।[32] अत एव सिद्धान्त में कारणों में कार्य की उत्पत्ति के अनुकूल समस्त शक्तियों को पृथक् पदार्थ माना है।[33]

उन-उन पदों से उत्पन्न विशेष पदार्थ का ज्ञानरूप कार्य से शक्ति अनुमेय मानी गयी है। ऐसी शक्ति के विषय को शक्य कहते हैं।[34] प्रतिबन्धकाभाव अभावरूप होने से उसमें किसी भाव कार्य के प्रति कारणता नहीं बन सकती। इसके अतिरिक्त दाह आदि कार्य वुिनिष्ठ दाहानुकूल शक्तिरूप पदार्थ से युक्त है, क्योंकि उसमें कार्यत्व घट आदि के समान कार्यत्व है। यह अनुमान भी शक्ति को अतिरिक्त पदार्थ सिद्ध करता है। इसी प्रकार परमात्मा की अनेकविध सत्त्व आदि गुणों से अनेकरूप पर अर्थात् सूक्ष्म कार्यगम्य शक्ति है। सभी पदार्थों में अचिन्त्य अर्थात् अनिर्वचनीय और कार्य के ज्ञान से गम्य शक्तियाँ हैं।[35]

शक्तिवृत्तिता का निरूपण

पद की शक्ति व्यक्तिरूप अर्थ, जातिरूप अर्थ अथवा आकृतिरूप अर्थ में होती है। सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने इसके भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रतिपादित किया है। विद्यारण्य ने अपने विवरणप्रमेयसंग्रह नामक ग्रन्थ में इसका इस प्रकार से वर्णन किया है-वैदिक; सम्भवतः मीमांसकद्ध प्रत्यक्षसिद्ध व्यक्ति, आकृति, क्रिया एवं गुण आदि अर्थों में प्रयुज्यमान गोशब्द का जातिरूप अर्थ ग्रहण करते हैं। सांख्य व्यक्तिरूप अर्थ को, वैयाकरण

---

[30] पदानां कार्यान्वितेषु एव अर्थेषु वृत्तिं वदतां प्राभाकराणाम्। वे. प. अ. दी., आगमपरिच्छेद पृ. १५२

[31] सा च शक्तिः पदार्थान्तरम्। वे.प., आगमपरिच्छेद पृ.१५२

[32] तथा च शक्तेः पदार्थान्तरत्वे दाहादिलक्षणकार्यानुपपत्तिरेव प्रमाणं प्रतिबन्धकाभावस्य त्वभावतया न हेतुत्वम्। वे. प. अ. दी., आगमपरिच्छेद पृ. १५३

[33] सिद्धान्ते कारणेषु कार्यानुकूलशक्तिमात्रस पदार्थान्तरत्वात्। वे. प., आगमपरिच्छेद पृ. १५३

[34] सा च तत्तत्पदजन्यपदार्थज्ञानरूपकार्यानुमेया। तादृशशक्तिविषयत्वं शक्यत्वम्। वही, पृ. १५४

[35] 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' 'शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्या ज्ञानगोचराः' इत्यादिश्रुतिस्मृति वचनान्यपि पृथक्शक्तिसद्भावे मानमित्यर्थः। वे. प. अ. दी., आगमपरिच्छेद पृ. १५३

जाति तथा व्यक्ति, जैन अवयवसंस्थानरूप आकृति को, नैयायिक व्यक्ति, जाति एवं आकृति तीनों को मानते हैं।[36] वेदान्तपरिभाषा के टीकाकार शिवदत्त ने जाति को अनुगत धर्म माना है।[37]

प्रसिद्ध मीमांसक गागाभट्ट ने भाट्टचिन्तामणि में प्रतिपादित किया है कि अव्यवधान पूर्वक शब्द से उत्पन्न होने वाली प्रतीति के अनुकूल वृत्ति ही शक्ति है।[38] प्रसिद्ध नैयायिक अन्नम्भट्ट के अनुसार अर्थ की स्मृति के अनुकूल पद एवं पदार्थ का सम्बन्ध शक्ति है।[39] उस शक्ति से युक्त पद शक्त है। शक्त पद चार प्रकार के होते हैं-यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ एवं यौगिकरूढ़।

जहाँ पर अवयवरूप अर्थ जाना जाता है वह यौगिकपद है, जैसे पाचक आदि। जहाँ अवयवशक्ति अपेक्षित न हो केवल समुदाय शक्ति का ग्रहण हो, वह रूढ़ है। जैसे गाय एवं मण्डप पद। जहाँ अवयवशक्ति विशेष में समुदायशक्ति भी हो वह योगरूढ़ है जैसे पङ्कज पद। यहाँ पङ्कज पद अवयव शक्ति के द्वारा कीचड़ से उत्पन्न कर्तृरूप अर्थ का बोध कराता है। वही पङ्कज शब्द समुदाय शक्ति के द्वारा कमल अर्थ का बोध कराता है। जहाँ यौगिक अर्थ एवं रूढ़ अर्थ दोनों का स्वतन्त्ररूप से बोध होता हो वह यौगिकरूढ़ है। जैसे उद्भिद पद यहाँ उद्भिद् पद उद्भिदेन कर्ता तरु और गुल्म आदि का बोध कराता है एवं याग विशेष का भी बोध कराता है।[40]

प्रसिद्ध वैयाकरण नागेशभट्ट ने परमलघुमञ्जूषा में नैयायिकों द्वारा स्वीकृत ईश्वर की इच्छा का खण्डन करते हुए वाच्य-वाचक भाव को शक्ति माना है, क्योंकि शब्द में वाचकत्व धर्म और अर्थ में वाच्यत्व धर्म सभी के मत में समानरूप से प्रसिद्ध है।[41] वे शक्ति का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार दीपगत प्रकाशकत्व शक्ति रहने पर भी आलोक विषयक सम्बन्ध रहने पर ही वस्तु प्रकाशित होता है। उसी प्रकार पद

---

[36] गोशब्दस्य हि प्रत्यक्षसिद्धव्यक्त्याकृतिक्रियागुणाद्यर्थेषु प्रयुज्यमानस्य जातिरर्थत्वेन वैदिकैः प्रतिपन्नाः व्यक्तिः सांख्यादिभिः। उभयं वैयाकरणैः। अवयवसंस्थानाख्याऽऽकृतिरार्हतादिभिः। त्रितयमपि नैयायिकैः। वि. प्र. सं. १.४

[37] जातिरधनुगतो धर्मः। वे. प. अ. दी., आगमपरिच्छेद पृ. १५५

[38] अव्यवधानेन शब्दजन्यप्रतीत्यनुकूला वृत्ति: शक्ति:। भा. चि. त. अ., पृ.१२१

[39] अर्थस्मृत्यनुकूल: पदपदार्थसम्बन्ध: शक्ति:। त. सं. दी. पृ. १५२

[40] शक्तं पदम्। तच्चतुर्विधम्। क्वचिद्यौगिकं क्वचिद्रूढं, क्वचिद्योगरूढं क्वचिद्यौगिकरूढम्। तथाहि यत्रावयवार्थ एव बुध्यते तद्यौगिकम्। यथा पाचकादिपदम्। यत्रावयवशक्तिनिरपेक्षया समुदायशक्त्या गृह्यते तद्रूढम्। यथा गोमण्डपादिपदम्। यत्र तु अवयवशक्तिविशेषे समुदायशक्तिरप्यस्ति तद्योगरूढं यथा पङ्कजादिपदम्। तथाहि पङ्कजपदमवयवशक्त्या पङ्कजनिकर्तृरूपमर्थं बोधयति समुदायशक्त्या च पात्वेन रूपेण पां बोधयति। ...यत्र तु यौगिकार्थरूढ्यर्थयो: स्वातन्त्र्येण बोधस्तद्यौगिकरूढम्। यथोद्भिदादिपदम्। तत्र हि उद्भेदनकर्ता तरुगुल्मादिर्बुध्यते। यागविशेषोऽपीति। न्या. सि. मु., शब्दखण्ड, पृ. ३८१-३८५

[41] तस्माद् पदपदार्थयोः सम्बन्धान्तरमेव शक्तिः, वाच्यवाचकभावपर्याया। प. ल. म. पृ.१५

गत वाचकत्व शक्ति रहने पर भी तादात्म्य सम्बन्ध रहने पर ही अर्थ प्रकाशित हो सकता है अन्यथा नहीं। इसलिये शक्ति कार्य जनक होती हुई भी सम्बन्ध से नियमित होती है,[42] क्योंकि उसे कार्य निष्पन्न करने के लिये सम्बन्ध की नियमतः अपेक्षा होती है। वह शक्ति तीन प्रकार की है- रूढ़ि, योग एवं योगरूढ़ि।[43] जिसमें शास्त्र कल्पित अवयवों का अर्थ नहीं हो और समुदाय अर्थ निरूपित शक्ति हो, अर्थात् जिस पद के अवयवों का अलग-अलग कोई अर्थ नहीं हो किन्तु समुदाय का अर्थ हो, उस पद में रूढ़ि शक्ति है। जैसे-मणि, नूपुर इन पदों में अवयवों का कुछ भी अर्थ नहीं होता।[44]

जिसमें शास्त्र कल्पित अवयवों का अर्थ हो अर्थात् जिसमें प्रकृति एवं प्रत्यय के योग के पृथक् करने पर पद का अर्थ हो, उस पद में योगशक्ति है। जैसे- पाचक आदि, यहाँ पकाने वाला अर्थ, पच् धातु से अक प्रत्यय के योग से अर्थ निकलता है, यहाँ पार्थक्य करने पर अर्थ स्पष्ट प्रतीत होता है।[45]

जो शास्त्र कल्पित अवयवों के अर्थ के साथ विशेष अर्थ को बता सके अथवा जो अपने सम्पृक्त हुए शब्दों से निकलने वाले अर्थ का बोध करा कर किसी तीसरे ही अर्थ को बता सके वह योगरूढ़ि है। जैसे-पङ्कज शब्द यहाँ कीचड़ में पैदा होने वाले कमल का बोध कराता है किन्तु कीचड़ में केवल कमल ही पैदा नहीं होता इसलिये यहाँ केवल पार्थक्य का अर्थ नहीं बताकर अवयवार्थ से अन्वित कमल अर्थ बताता है।[46]

शक्ति दो प्रकार की होती है- प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध। मन्द बुद्धियों के द्वारा भी जानने योग्य शक्ति प्रसिद्धशक्ति है। जो केवल सहृदय लोगों से ही वेद्य हो वह अप्रसिद्धशक्ति है। उसमें 'गङ्गायां घोषः' इस स्थल में गङ्गा आदि पद के प्रवाह आदि में जो शक्ति है वह प्रसिद्धशक्ति है। तीर आदि में जो शक्ति है वह अप्रसिद्धशक्ति है।[47]

---

[42] शक्तेरपि कार्यजनकत्वे सम्बन्धस्यैव नियामकत्वात्। दीपादिगत-प्रकाशकत्वशक्तावपि आलोकविषयसम्बन्धे सत्येव वस्तुप्रकाशकत्वं नान्यथेति दृष्टत्वात्। वही, पृ. १६

[43] सा च शक्तिसिद्धा, रूढिर्योगो योगरूढिश्च। वही, पृ. ३०

[44] शास्त्रकल्पितावयवार्थभावनाभावे समुदायार्थनिरूपितशक्ती रूढिः, यथा मणिनूपुरादौ। प.ल. म., पृ. ३०

[45] शास्त्रकल्पितावयवार्थनिरूपिता शक्तिर्योगः, यथा पाचकादौ। वही

[46] शास्त्रकल्पितावयवार्थान्वितविशेष्यभूतार्थनिरूपिता शक्तिर्योगरूढिः यथा पङ्कजपदे। तत्र पङ्कजनिकर्तृ पद्ममिति बोधात्। वही

[47] तथाहि शक्तिर्द्विविधा-प्रसिद्धाऽप्रसिद्धा च आमन्दबुद्धिवेद्यत्वं प्रसिद्धत्वम्। सहृदयहृदयमात्रवेद्यात्वमप्रसिद्धत्वम्। तत्र गङ्गादिपदानां प्रवाहादौ प्रसिद्धा शक्तिः तीरादौ चाप्रसिद्धेति किमनुपपन्नम्। प. ल. म. पृ.५१

निष्कर्ष यह है कि न्याय के मत में शक्ति युक्त पद चार प्रकार के होते हैं-यौगिक, रुढ़, योगरुढ़ और यौगिकरुढ़। व्याकरण के मत में शक्ति तीन प्रकार की होती है-रुढ़ि, योग एवं योगरुढ़। शाङ्करवेदान्त में मुख्य वृत्तिरूप शक्ति योग एवं रुढ़ि के भेद से दो प्रकार की होती है। अन्य दो भेद उल्लिखित नहीं है किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वे शङ्कर को मान्य नहीं हैं। अनुमान किया जा सकता है कि योग और रुढ़ि के मिश्रण से निष्पन्न होने के कारण यौगिक एवं यौगिकरुढ़ नामक न्याय सम्मत दो भेद भी शङ्कर को अस्वीकृत नही रहे होंगे। किन्तु सुस्पष्ट प्रमाण की उपलब्धि होने तक इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है।